RJPP, Vol. XXIII, No.II, April 25-Sept.25, ISSN (P): 0976-3635, (e):2454-3411, Impact Factor 8.858
https://doi.org/10.31995/rjpp.2025.v23i02.031

चितवृत्ति निरोध रूप अभ्यास और वैराग्य का वर्णन

डॉ0 नीतू कुमारी
सहायक प्रोफेसर (दर्शनशास्त्र विभाग)
टी.एन.बी. कॉलेज भागलपुर,
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
ईमेलः nitu3037@gmail.com

सारांश

यौगिक पद्धति भारतीय जीवन संस्कृति, दर्शन, धर्म, आदि में प्राचीन समय से अन्तर्भूत है। योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराणों आदि में पुरातन काल से व्यवहार में लाया जाता रहा है। आत्म दर्शन एवं समाधि से लेकर कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है। हिंदू दर्शन के प्राचीन मूलभूत सूत्र के रूप में योग की चर्चा की गई है और सबसे अलंकृत पातंजल योग सूत्र में इसका उल्लेख किया गया है। योग सूत्र के अनुसार योगश्चित वृत्ति निरोधः[1] अर्थात चित की वृतियों का निरोध ही योग है। मन, बुद्धि, अहंकार के समष्टिभूत अंतःकरण को चित् कहा गया है। योग सूत्र में चित् वृति निरोध के साधनों के रूप में अभ्यास और वैराग्य का वर्णन किया गया है जिसको अपनाकर साधक अपने अंतिम लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

मुख्य शब्द

चितवृत्ति ,मोक्ष, कैवल्य ,अभ्यास ,वैराग्य, समाधि

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 10/08/25
Approved: 20/09/25

डॉ0 नीतू कुमारी

चितवृत्ति निरोध रूप अभ्यास और वैराग्य का वर्णन

RJPP Apr.25-Sept.25,
Vol. XXIII, No. II,
Article No. 31
Pg. 235-239
Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/rjpp-sept-2025-vol-xxiii-no2-261

https://doi.org/10.31995/rjpp.2025.v23i02.031

प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने अपने पहले ही अध्याय में ''योगश्चित् वृत्ति निरोध'' कह कर योग का लक्षण स्पष्ट किया है।[2] अर्थात चित वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग को चित्त का सर्वभौम, सभी भूमियों में रहने वाला धर्म माना गया है। चित्त अपने स्वरूप में त्रिगुणात्मक होता है अर्थात चित्त में सत्व, रज और तम तीन गुण मौजुद रहते हैं। प्रकृति में व्याप्त तीन गुण का स्वरूप भिन्न–भिन्न होता है जैसे सत्व गुण सुखात्मक और प्रकाशक है, रजोगुण दुखात्मक तथा तमोगुण मोहात्मक एवं अवरोधक का कार्य करता है।

चित्त की विभिन्न अवस्थाएँ ही चित्त की भूमियाँ कही जाती हैं जो कि क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध कही गई है।[3] क्षिप्त की अवस्था में रजोगुण प्रधान एवं सत्व तथा तमोगुण गौण अवस्था में रहते हैं। मूढ में तमोगुण प्रधान होता है। विक्षिप्त, क्षिप्त एवं मुढ के मध्य की अवस्था कही जाती है। एकाग्र में सत्व गुण प्रधान, रजोगुण एवं तमोगुण अल्प मात्रा में रहते हैं। निरुद्ध में केवल सत्य गुण ही रहता है एवं समस्त वृत्ति का निरोध हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपेक्षित होगा कि क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त यह तीन भूमियाँ योग मार्ग में साधक के समक्ष अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित करते हैं इसलिए चित्त की यह तीन भूमियाँ योग साधना के लिए सर्वधा अनुपयुक्त एवं प्रतिकुल है। अंतिम दो भूमियाँ एकाग्र और निरुद्ध ही योग साधना के लिए उपयुक्त है। योग का सारभूत उद्देश्य मन की वृत्ति को रोकना है। चित्त का किसी विशिष्ट प्रकार से रहना ही वृत्ति कहा जाता है। यह असंख्य तथा अनवरत परिवर्तित होती रहती है। असंख्य होने के बावजूद चित् वृत्तियों को पांच वर्गो में बांटा गया है – प्रमाण, विप्रया, विकल्प, निद्रा, स्मृति। वास्तविक घटनाओं का ज्ञान कराने वाली वृत्ति प्रमाण वृत्ति होती हैं। यह तीन प्रकार की हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द। मिथ्या ज्ञान अर्थात वास्तविक रूप को ना समझना एवं किसी घटना के बारे में गलत ज्ञान का होना ही विपर्यय वषति हैं। किसी वस्तु के उपस्थित नहीं होने पर भी उस वस्तु के होने का ज्ञान या कल्पना करना ही विकल्प वृत्ति हैं अर्थात् निराधार कल्पना। जहाँ ज्ञान का अभाव होता है तथा व्यक्ति का संबंध बाह्य जगत से टूट जाता हैं तब निंद्रा वृत्ति होती हैं। पूर्व में अनुभव किए गए संस्कारों तथा विषयों का पुनः स्मरण होना ही स्मृति वृत्ति हैं।

चित में उठने वाली वृत्ति तरंगें ही योग मार्ग की सबसे प्रमुख बाधक है। यदि इन वृत्तियों को नष्ट कर दिया जाए तो योग को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए महर्षि पतंजलि चित् वृत्ति निरोध के लिए दो सर्वसाधारण उपाय बताएं हैं – अभ्यास और वैराग्य। इन दोनों उपायों की उपयोगिता चितवृत्ति निरोध के क्रम में इस प्रकार है कि वैराग्य के द्वारा चितवृत्तियों की विषयो की ओर सहज उन्मुखता रोकी जाती है तथा अभ्यास के द्वारा चित को एकाग्र या स्थिर किया जाता है। S.N. Das gupta ने 'Yoga as Philosophy and Religion' में 'Yoga practice' नामक गयरहवें अध्याय में 'योग अभ्यास' के अंतर्गत अभ्यास वैराग्य की चर्चा की है।[4]

G.Feuerstein ने भी 'The Philosophy of classical yoga' में 'Practice concept' को शामिल किया हैं।[5] 'गीता' में स्पष्ट रूप से इस बात का विवरण मिलता है कि विषादग्रस्त अर्जुन को जब कृष्ण मन को संयमित रख चिंतन करने की बात कहते हैं तो अर्जुन नहीं समझ पाते कि इस वायु

के वेग से भी तेज गति वाले मन को कैसे थामे, अर्जुन के यह पूछने पर श्रीकृष्ण कहते हैं 'अभ्यासेन तु कोतेयः' कि अर्जुन निरंतर अभ्यास के द्वारा मन और चित्त को संयमित रखा जा सकता है। वास्तव में यह अभ्यास, योग का ही एक रूप है।[5]

ऐसा कहा जाता है कि मानव का चित् अत्यंत चंचल तथा उसमें तरंगे उठती रहती हैं। इसके समाधान में योगसूत्र में कहा गया हैं कि ''स तु दीर्घकाल दीर्घकाल नैरंतर्यसत्कार सेवितो दृढ़भूमि''।[6] यदि अभ्यास दीर्घकाल, निरंतर और सत्कार पूर्वक किया जाए तो वह दृढ़ हो जाता है। चित् की एकाग्रता को स्थिर बनाने के लिए योगानुष्ठान करना चाहिए। योग के अनुष्ठानों में ईश्वर प्रणिधान, क्रियायोग, धारणा, ध्यान, प्रतिपक्षभावना, समाधि, मैत्री, करूणा, मुदिता एवं अपेक्षा आदि को शामिल किया गया है। लेकिन पतंजलि ने इन समस्त उपायों को किसी एक बृहत अभ्यास में सम्मिलित किया है और वह है अष्टांग योग। इसीलिए अष्टांग योग संपूर्ण अभ्यास के रूप में माना जाता है। अष्टांग योग में सम्मिलित अंग है– यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि। I.k.Taimini ने "The science of yoga" में अष्टांग योग में तीन प्रकार का अनुशासन स्वीकारा है। (यम एवं नियम) नैतिक अनुशासन, (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) को शारीरिक अनुशासन एवं (धारणा, ध्यान,समाधि) को मानसिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन माना है।

'वैराग्य' एक संस्कृत शब्द है जिसका उपयोग मोक्ष प्राप्त करने के एक साधन के रूप में किया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जब साधक को सांसारिक एवं पारलौकिक किसी भी प्रकार के विषयों में राग ना रहे वही वैराग्य है। इसे धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कृति में आत्मानुभूति और मोक्ष प्राप्ति का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वैराग्य के व्यक्त होने पर व्यक्ति मान, अपमान, संबंधों, भोगो, संपत्ति और आस्था के प्रति आसक्ति से परे हो जाता है। यह अंतर्मुखी चिंतन ध्यान और साधना के लिए मानसिक शांति और आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग भी खोलता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं–''दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यः'' देखें और सुने हुए विषयों में सर्वथा तृष्णारहित चित् की जो वशीकर नामक अवस्था है वह वैराग्य है। वैराग्य का अर्थ विमुख होना नहीं बल्कि अपने और पराए, राग और द्वेष से ऊपर उठकर निष्काम और निष्पक्ष तत्व का अनुसंधान करना है। त्याग, सादगी और साधना वैराग्य का लक्षण हैं जिसके बिना शांति और आत्म कल्याण नहीं हो सकता है। पतंजलि कहते हैं जब कोई योगी मन के सच्चे और झूठे संस्कारों के बीच भेद करने में सक्षम हो जाता है तब वह वैराग्य सीख जाता है। इसलिए योगी सभी बाहरी आसक्तियों को त्याग कर अपने वास्तविक स्वरूप में आनंदित हो जाता है। योग दर्शन में वैराग्य के दो महत्वपूर्ण रूप बताए गए हैं – अपर वैराग्य एवं पर वैराग्य। सभी प्रकार के भोगों से चित जब तृष्णारहित हो जाता है, इच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है तब ऐसे ही कामनारहित चित की अवस्था को अपर वैराग्य बताया गया है। पतंजलि अपर वैराग्य को वशिकारसंज्ञक वैराग्यम कहते हैं। लौकिक एवं परलौकिक विषयों के प्रति जो वैराग्य है वह अपर वैराग्य कहलाता है। इन विषयों को दृष्ट एवं आनुश्राविक विषयों के नाम से जाना जाता है। दृष्ट विषय वे है जिसकी प्राप्ति संसार मे हो सकती है। इसके अंतर्गत समस्त जड़ एवं चेतन साधनों का समावेश होता है। दूसरे वे विषय होते है जिसकी इस संसार में उपलब्धि ना होने पर भी वेदादि शास्त्रों के द्वारा उसका ज्ञान होता है। वे आनुश्राविक विषय कहे गए है। अपर वैराग्य के

विकास क्रमानुसार इसकी चार अवस्थाएं मानी गई है – यत्मान, व्यतिरेक, एकेंद्रिय, वशिकार। रागादि, क्लेश चित के मल कहे जाते है जिनके द्वारा इंद्रियां अपने अपने विषयों में प्रवृत्त ना हो इसके निरोध के लिए जो यत्न किए जाते है, वह यत्मान संज्ञक वैराग्य है। व्यतिरेक में जिन चित के मलो को शांत कर लिया गया है तथा जिसको शांत करना अभी बाकी है। जब इस तरह के अंतर को निश्चित किया जाता है तो वह व्यतिरेक होता है। एकेंद्रिय वैराग्य के अंतर्गत बाह्य इन्द्रियों का अपने विषय रूप मे रागादि का क्षय हो जाने पर केवल मन में ही जो मान–अपमान विषयक राग द्वेषादि विद्यमान रहते है उनका भी ज्ञान पूर्वक समाहित एकेंद्रीय वैराग्य है। वशिकार वैराग्य की चरमावस्था है। जब राग द्वेष शून्य स्थिति होती है वह वशिकार वैराग्य है।

पतंजलि कहते हैं – ''तत्पर पुरुष ख्यातिगुण वैतष्णयम''[7] अर्थात पुरुष के ज्ञान से जो प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाता है, वहीं पर वैराग्य है। पर वैराग्य के अभ्यास से संप्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती है, जिसके पश्चात साधक कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अपर वैराग्य विषय–विषयक है जबकि पर वैराग्य ज्ञान विषयक है।

इस प्रकार पतंजलि समाधिपाद के 12वें सूत्र में स्पष्ट करते हैं कि चितवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य से होता है। (अभ्यासवैराग्यम्या तन्निरोधः) इन दोनों उपायों की उपयोगिता चितवृत्ति निरोध के क्रम में इस प्रकार से है कि वैराग्य के द्वारा चितवृत्तियों की विषयों की ओर सहज उन्मुखता रोकी जाती है अर्थात उनकी ओर से चित् को विमुख किया जाता है। श्रीमद् भागवत गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने भी मनोनिग्रह के लिए अभ्यास एवं वैराग्य को उपाय बताया है–

''अशंष्य महाबाहो! मनोदनिग्रह चलम।
अभ्यासेन तु कोनतेय! वैराग्येंन च गृहस्ते।''[8]

निष्कर्ष

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से आत्म साक्षात्कार की उपलब्धि संभव है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में परिपूर्णता प्राप्त करने के लिए इन दोनों की आवश्यकता पड़ती है। अतः दोनों अन्योन्याश्रित हैं। कैवल्य के लिए योग की आवश्यकता, योग के लिए अभ्यास की आवश्यकता, तथा अभ्यास के लिए वैराग्य की आवश्यकता है अतः सभी एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि चित् की वृत्तियों के निरोध के साधन का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि चित् वृत्तियों के निरोध से साधक अपने स्वरूप में अवस्थित होना ही कैवल्य या मोक्ष है। साधक अपनी योग्यता रुचि के अनुसार इनमें से कोई भी साधन प्राप्त कर सकता है जिसके फलस्वरूप आत्मज्ञान की प्राप्ति कर सकता है जो कि योग साधना का मुख्य लक्ष्य हैं।

संदर्भ

1. सरस्वती, स्वामी सत्यानंद, ''मुक्ति के चार सोपान' योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2004, पृ० सं०–2–3
2. श्रीवास्तव, सुरेश चंद्र; पातंजल योग दर्शना, चौखंबा भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृ० सं०–10

3. गुप्ता, डा. पवन कुमारी; पातंजल योगसूत्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
4. Das gupta, S. N. 'Yoga as Philosophy and Religion 'Motilal Banarsidas, Delhi, Pg. 124 – 149.
5. Feuerstein, G. 'The philosophy of classical Yoga 'St- Martin's press, New York, 1980, Pg. 78 – 108.
6. गुप्ता, डा. पवन कुमारी; पातंजल योगसूत्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
7. तत्ववैशारदी, पृ० सं०–49 ,(पवन कुमारी गुप्ता)
8. श्री मदभागवदगीता – 6/35